दिग् दिगन्त

रचनाकार
डा० ओंकार नाथ त्रिपाठी

प्रकाशक
साधु प्रकाशन
42, ताशकन्द मार्ग, इलाहाबाद-211001

समर्पण

क्रान्ति दूतों को,
जो विभिन्न क्षेत्रों में
नित्यनये कीर्तिमान
स्थापित कर रहे हैं,
जो भारतीय मनीषा एवं
मानव की अदम्य जिजीविषा को
गौरवान्वित करते हुए,
धरती का मोल चुका रहे है।

—ओंकार नाथ त्रिपाठी

प्रकाशकीय

उच्च शिक्षा, विशाल अनुभव और सहज प्रतिभा के धनी डा० ओंकार नाथ त्रिपाठी की कविताएं "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" (अर्थात् जो नित्य नया लगे वही रमणीय है) की पर्याय हैं। रमणीयता काव्य की आधार शिला है।

हृदय पक्ष और बुद्धि पक्ष--दोनो का अद्भुत समन्वय "दिग् दिगन्त" की रचनाओं में सुधी पाठकगण पायेंगे। साहित्य सर्जना, त्रिपाठी जी का व्यवसाय नहीं, व्यसन है और शायद उनकी बौद्धिक विवशता भी। इसीलिए, महादेवी वर्मा, सोहन लाल द्विवेदी आदि मूर्धन्य साहित्यकारों ने उनकी कविताओं की मुक्त कण्ठ से सराहना की है। परमाणु युद्ध की विभीषिका मे पल रही मानवता के लिये, त्रिपाठी जी की रचनाओं में आशा, उल्लास और आस्था का सन्देश मुखरित है जिसका पूरा आनन्द उनकी कविताओ को पढ कर ही लिया जा सकता है।

अपनी बात

सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर किस तरह शृंखलाओं ने हमें जकड़ रखा है—इसका अनुमान लगाना आसान नहीं—उससे भी कठिन है, इसका एहसास होना और उससे भी अधिक कठिन है, इन शृंखलाओं से मुक्ति के अभियान में भाग लेना। इस सन्दर्भ मे समाजशास्त्री, समाजसेवी एवं समाज के अग्रणी लोगों ने जो परिवेश बना रखा है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समाज के रथ को विभिन्न सारथी विभिन्न दिशाओं में हांक रहे हैं और परिणाम यह हो रहा है कि रथ के पहिये गतिमान होने के बजाय एक ही स्थान पर धँसते जा रहे हैं। संवेदनशील काव्यकार ऐसी स्थिति का मूक दर्शक बन कर नहीं रह सकता और न तो वह काष्ठवत्, लोष्ठवत् जी कर अपने प्रति ईमानदार ही रह सकता है।

स्वतन्त्रता की उषा की लालिमा दिखलाई तो पड़ी किन्तु स्वर्णिम विहान कहाँ अटक गया? "उषा की किरन कुछ भटक सी गई है, ठिठुरती शिशिर की निशा शेष अब भी।" हमने भाग्यश्री के सम्मुख राष्ट्रीय स्तर पर कुछ वादे किये थे, कुछ संकल्प किये थे—उस अनुष्ठान का क्या हुआ? "गगन के सितारों से कह दो न चमकें, घरों के दिये हो तिमिर को हरेंगे।" कई बार पड़ावों ने मंजिल होने का दावा किया—हमारी आस्थाओं ने हमे छला। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ? वैसे तो यह इतिहास और समाजशास्त्र के अनुसन्धान का विषय है किन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि आजादी के बाद भारत मे आशाओं और महत्वाकांक्षाओं का तो समाजीकरण हो गया किन्तु तपस्या और साधना का अध्याय मानों पाठ्यक्रम से हटा दिया गया। इस हास्यास्पद स्थिति के दुष्परिणाम भी हमी झेलेंगे। एक दृष्टि से वर्तमान युग ही विरोधाभासों और विसंगतियों का युग कहा जा सकता है। चाँद पर तो हमने कदम रख दिये लेकिन धरती पर चलना भूल गये, विश्व बन्धुत्व की बात करते हैं किन्तु पड़ोसी की जड़ खोदते हैं, प्रेम, सद्भाव का उद्घोष करते हैं किन्तु सारी कार्य पद्धति घृणा और वैमनस्य से प्रेरित हैं, शान्ति का कपोत तो उड़ाते है किन्तु निरीह कपोत को दबोचने के लिये युद्ध और हिंसा का बाज पाले हुए हैं। इन भयंकर विसंगतियों की निर्मम चट्टानों मे दब कर कविता कला ने अभी अन्तिम साँस नही ली—यही क्या कम आश्चर्य की बात है?

किसी भी जीवित समुदाय के इतिहास मे ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि

समस्याएँ न रही हो किन्तु वर्तमान भारत की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि समस्याओं के समाधान के लिये उठाये गये कदम उतने सार्थक और प्रामाणिक नहीं हो पाये, जितनी अपेक्षा थी। हिन्दी उर्दू का विवाद करीब-करीब समाप्त हो चुका था। हिन्दी भाषा ने उर्दू के हजारों शब्दों को अपनाया और बोलचाल की हिन्दी भाषा गंगा यमुनी धारा अथवा मणिकांचन शैली का आदर्श बन गई थी। अरबी लिपि में कुछ लोग निपुणता प्राप्त करने को उत्सुक हों तो उन्हें रोका भी नहीं जाना चाहिये किन्तु यवन लिपि के कारण भारतीय समाज के उत्थान और अभ्युदय की धुरी का पीछे घिसटाना अथवा काल की धारा को पीछे मोड़ने में अपने सीमित साधनों का अपव्यय करना न्यायसंगत नहीं है।

समाज में धन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है किन्तु समाज के सभी क्रिया-कलापों की धुरी के रूप में पैसे का स्वीकार करना अनर्थकारक होगा—जीवन मूल्यों का शीर्षासन होगा। यश, प्रीति, कला, साहित्य कोमल मानवीय गुण पैसे के अनुचर नहीं हो सकते अन्यथा सांस्कृतिक सन्तुलन में विकृतियाँ आ जायेंगी। इन विकृतियों को उजागर करना साहित्यकार का दायित्व है।

राजनैतिक और आर्थिक शृंखलाओं से कहीं अधिक खतरनाक होती हैं वैचारिक एवं सांस्कृतिक शृंखलाएँ। भारतीय सन्दर्भ में कुछ लोगों की यह धारणा थी कि अंग्रेजी भाषा के बिना अनर्थ हो जायगा। इस प्रकार की धारणा अन्धविश्वास है और सच्चाई की कसौटी पर खरी नहीं उतर सकती। प्रबुद्ध भारतीय चेतना के अग्रदूत—स्वामी दयानन्द, कविरत्न रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाधी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन आदि अनेक महापुरुषों ने अपनी करनी और कथनी से ऐसी धारणाओं, ऐसे पूर्वाग्रहों को ध्वस्त करने में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। इन महापुरुषों का नाम लेकर मैं किसी को आतंकित नहीं करना चाहता हूँ किन्तु मैं अपने आन्तरिक अवसाद को छिपा नहीं पाता हूँ जब देखता हूँ कि हिन्दी के पक्ष में युग प्रवाह की वज्रलिपि को पढ़ते समय कुछ लोग निहित स्वार्थों के कारण धृतराष्ट्र बन जाते हैं। सच तो यह है कि भारतीय मनीषा, भारतीय प्रतिभा, भारतीय जिजीविषा का जितना प्रामाणिक प्रस्फुटन हिन्दी भाषा के माध्यम से हुआ है और हो रहा है वह किसी भी विदेशी भाषा के माध्यम से सम्भव ही नहीं है।

ऊपर कही गई विसंगतियों का अर्थ यह कभी नहीं लगाया जाना चाहिये कि सब कुछ स्वाहा हो गया और अब कुछ नहीं किया जा सकता। भारतीय मनीषा पर और अपने आप पर मुझे अदम्य विश्वास है। मैं जन्मजात आशावादी हूँ—दिवास्वप्न देखने की सीमा तक। "दिग् दिगन्त" की रचनाएँ मेरी आस्था और

मेरे विश्वास को रेखांकित करती हैं। स्वर्णिम भविष्य हमार प्रतीक्षा में है, लक्ष्य हमारी पहुँच के भीतर है—केवल सही सोच, सही 'ऐप्रोच' की जरूरत है। ढाँचा उसी तरह बनेगा जिस तरह साँचा तैयार होगा। हमें ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक साँचे को गढ़ना है जिसमें सही बात कहने वाला, सही राह दिखलाने वाला, सही गन्तव्य बतलाने वाला निर्भय होकर अपनी बात कह सके, अपनी राह पर चल सके और इच्छुक सह यात्रियों को साथ लेकर बढ़ सके। मान, सम्मान पुरस्कार साहित्यकार के पथ की शोभा बढ़ाएं लेकिन, उसकी राह पर रोड़ा न बन जाएँ। मान्यता, सत्साहित्य की मंजिल नही अनुचरी है। नव युग की चुनौतियों का सामना करने की ललक से भरपूर और प्रकाश पथ पर मानव की जय यात्रा का पाथेय बनने की क्षमता रखने वाला साहित्य ही कालजयी बन सकता है। इस अग्नि परीक्षा मे "दिग् दिगन्त" की रचनाएं कहाँ तक खरी उतरेंगी—यह मेरे कहने की बात नही है।

१ मई, १९८४ —ओंकार नाथ त्रिपाठी

२४, चौखण्डी, कृष्णनगर

इलाहाबाद–३

अनुक्रम

युग युग संग कामना मेरी

युग-युग संग कामना मेरी
कुछ पल भी दुस्स्वार हुए क्यों ?
जैसा था मैं वैसा ही हूँ
आगे भी वैसा रहना है
अपनापन स्नेहिल मन लेकर
कितना और अभी सहना है ?
गरल घटो को क्या समझाऊँ
कलश सुधा के क्षार हुए क्यों ?
युग-युग संग कामना मेरी
कुछ पल भी दुस्स्वार हुए क्यो ?
कौन तराजू कौन निकष है
कसकर देखा कब पहचाना
शब्दों, अर्थों को कुछ जाना
सोच लिया था कुछ मनमाना
सुमनों की भी मृदुता लेकर
गीत हमारे भार हुए क्यों ?
युग युग संग कामना मेरी
कुछ पल भी दुस्स्वार हुए क्यों ?

पथ लम्बा है मंजिल मुश्किल
प्रहरी ही वटमार वने हैं
कितने मंचों पर निर्णायक
अव भी कितने युद्ध ठने है
रस वरसाती वाणी असि से
कुसमय, गोठिल वार हुए क्यों ?
युग युग संग कामना मेरी
कुछ पल भी दुस्स्वार हुए क्यों ?

अग्नि परीक्षा

निन्दा स्तुति, मान अपमान
मेरे अनुभवों के जलयान
दुःख निराशा के महार्णव में
जिजीविषा का जलयान
न सरिता न सागर
किसी को डुबोने को नही है आतुर
इनमें डुबकी लगाने वाला
तैरना तो सीखे
न चिन्गारी न आग
किसी से खेलने को उत्सुक नही है फाग
कोई इनसे खेलने वाला
अग्नि परीक्षा में ठहरना तो सीखे ।

८ सितम्बर, १९८३

आज पावस का पवन दुलरा रहा है
आज पावस का जलद लहरा रहा है
आज अंकगणित के पचीस वर्षो की चर्चा नही
आज भोगी हुई व्यथाओ की अर्चा नही
विषाद और निराशा के कुहासो पर अंकित
मोटे अक्षरों में उल्लास की रजत, सुनहरी रेखा
हमारे जीवन पाथेय का लेखा
जिन्हे हम नही कर सकते देखा अनदेखा ।
राजकीय सेवा में पचीस पतझरों का डेबिट बैलेन्स
पचीस वसन्तों का क्रेडिट बैलेन्स
लेकिन इस मिलान में
कल्पनाओं के अभियान मे
कोरे अंकीय समीकरण को कहाँ है स्थान
दोस्त, हमारा साथ होना ही था एक अनुष्ठान
हमारे अनुभवों ने क्लेशो का किया है जलपान
मुसीबतों के सागर में बनाया जिजीविषा का जलयान
कैलेन्डर के पन्नो को उलटने दो
संवत्सर के पत्तों को झड़ने दो
इतिहास के अध्यायों को पनपने दो
काल के तुरगों को वेग से बढ़ने दो

आज साक्षरता दिवस है
न्याय के अक्षरों को क्या हम पढ़ पाये ?
अनुभूतियों की भट्ठी में मनचाहा अलंकार गढ़ पाये ?
संकीर्णता की दीवारों को तोड़कर
उदारता के शृंग पर चढ़ पाये ?
आज पावस का पवन कुछ कह रहा है
आज पावस का जलद कुछ कह रहा है
वर्ष है यह रजत,
बनेगा निश्चित यह कनक
बन सकेगा यह ही एक
अभी प्रतीक्षा मे है कितने वसन्त
हमसे गले मिलने को दिग्दिगन्त।
बीता, सेवा में शत शरद चतुर्थांश
रीता, सेवा मे शतशरद चतुर्थांश
हमने मधु कलश पिये
हमने कुछ गरल पिये
अनुभवों के उत्सव में
क्लेशों के अतिथि भी अनचाहे आये तो होंगे
जीवन के आकाश मे बादल तो छाये होगे
सुख के भी पाहुन पल
रस बरसाये होगे
अब भी मानस पटल पर छाये तो होंगे
आज करें उनका अभिनन्दन
स्नेहिल स्मृतियों से तोरण वन्दन
सुरभित साँसों का चन्दन।

गगन के तारे ! उगो अब

गगन के तारे ! उगो अब,
शाम गहराने लगी है

मीत परिचित बहुवचन में
गणित की संख्या निभाते
औपचारिकता मुखौटे
रूप अपने ही छिपाते

स्नेह निर्झर रस भरो अब
रिक्तता खाने लगी है
गगन के तारे ! उगो अब,
शाम गहराने लगी है।

कटु निषेधों की धरा पर
अजनबीपन ही जमेगा
स्वार्थ की हर कोठरी में
क्लेश विष जमकर रमेगा

जागरण के दूत ! आओ,
नींद अब आने लगी है
गगन के तारे ! उगो अब,
शाम गहराने लगी है।

प्यार की तो प्यास अद्भुत
बुझ गई तो शब्द लांछित
मौत की कुछ भूख ऐसी
मिल गई तो अर्थ वांछित

कुछ पलों की जिन्दगी खुद
जाम छलकाने लगी है
गगन के तारे ! उगो अब,
शाम गहराने लगी है ।

अंधी गलियाँ

अन्धी गलियाँ, अन्धे पथ, अन्धे राजमार्ग
बहुत दूर तक नही ले जाते
चुक जाने वाले रास्ते
अनजान पथो के सामने बौने है
पथो को अपनी दुरूहता का गुमान न हो
अपनी शक्ति का अनुचित अनुमान न हो
क्योंकि पथिक परिश्रान्त भले हों
कण्टकों के दुराग्रह से क्लान्त भले हों
पराजित नही होने वाले है
प्रकाश का उत्तराधिकार
अपने कन्धों पर ढोने वाले हैं
जाने, अनजाने दुःख और क्लेश
स्वयं पछतायेंगे, क्योंकि
ये राही, हँसी और मुस्कान के आदी
कभी नही रोने वाले है।

आगत

आगत, विगत और अनागत की
ज्यामितीय विभाजन रेखा
न किसी ने देखा
न किसी के द्वारा रह सकता है अनदेखा
भूत और भविष्य का सेतु
सभी कर्मकाण्डों का हेतु
काल के हाथ का अद्भुत खिलौना
सप्त द्वन्द्वों का बिछौना,
पाना, खोना
हँसना, रोना
जागना, सोना
बस एक बीज का बोना
होना, न होना।

मारीच

ऐसे भी पत्थर होते हैं जिन पर
साधारण हथौड़े खास चोट नहीं कर पाते
तोड़ने की प्रक्रिया में खुद टूट जाते हैं
ऐसी भी धातुएँ है जिन पर
निकष घिस जाते हैं
ऐसे भी लोग हैं जिन पर धावा बोलने वाले
कष्टों के दाँत खट्टे हो जाते हैं
अनेक क्लेशों के जनाजे निकल जाते हैं
माना कि कष्ट और क्लेश रूप बदलते हैं
मारीच बन कर छलते हैं
लेकिन हर मारीच के लिये राम का अचूक वाण
बन चुका होता है
राम रावण युद्ध ठन चुका होता है ।

अनुराग की डोर

अनुराग की डोर रिश्तों की मोहताज नही
आकर्षण की छोर किसी शाहजहाँ द्वारा निर्मित ताज नहीं
पर पीड़न जीवन का पाथेय नहीं
क्रोध अस्त्र हो भी तो आग्नेय नही
कंचन कामिनी कीर्ति लिप्साएँ
रूप रस स्पर्श गन्ध शब्द की इच्छाएँ
जीवन भवन के वातायन है, महाद्वार नहीं
क्षण क्षण में अवतरित, कण कण में वितरित
आनन्द स्वर लहरियाँ है, अनर्गल हाहाकर नहीं ।

कोई नई बात नहीं

ढावली मे गुटुर्गूं करने वाले कबूतर
और कुएँ मे सीना फुलाने वाले मेढक
खुले आसमान के पक्षी की अवहेलना करें
बस अपनी शेखी बघारें-कोई नई बात नही।
कुछ पक्षी सूर्य की उपेक्षा करते है
दिन में आखें बन्द किये रहते है
किसी नई परम्परा की शुरुआत नही
बसन्त में भी करील पल्लवित हो नहीं पाता
चमगादड़ सीधा सो नहीं पाता
किसी उपलब्धि की सौगात नही।

ब्रह्मास्त्र

मोहभंग का तक्षक मुझे निगल जाने को है तैयार
अकर्मण्यता की ताड़का होती जा रही है खूंख्वार
पलायन का मारीच स्वर्णिम संकेत करने को है प्रस्तुत
त्रास, कुण्ठा, ईर्ष्या, निराशा के तरकश सहयोग को उद्यत
मेरे अभिनव भाव अभी पूरे रससिक्त नहीं हुये हैं
सम्यक् अभिषिक्त नही हुए है
जीवन उल्लास का अभिमन्यु अभी नही हुआ निःशस्त्र
जिजीविषा की द्रौपदी अभी नही हुई निर्वस्त्र
अभी शेष है उत्साह का अमोघास्त्र
अपराजेय ब्रह्मास्त्र ।

नागफनी का लाल फूल

नागफनी की कोख से उगता लाल फूल
काँटों के हृदय की लालिमा का उद्घोष
आक्रान्ता सिकन्दर की नगरी में अद्भूत सुकरात
अंगुलिमाल के पड़ोस में अवतरित सिद्धार्थ
क्या नपुंसक है भुखमरी बेरोजगारी कलह के यथार्थ
इतिहास या भूगोल का प्रदोष
किसको दूँ दोष ?

पति—नौ के पहाड़े में

इकाई के सम्राट् नौ बने रहो
न कोई बाएँ न दाएँ, एकाकी तने रहो।
नवग्रह भी तुमको छेड़ने से कतरायेंगे
नौ निधियों के कोप तुम्हारे ऊपर बरसायेंगे
जहाँ तुमने अपने बगल में एक को बैठाया
अपना प्रभुत्व अपने हाथ गंवाया।
अब समय की देर है
यह कैसा अन्धेर है
नौ का पहाड़ा पढ़ते जाओ
इस सीढ़ी पर उतरते जाओ,
चाहे दूसरों की दृष्टि में चढ़ते जाओ
वामांक वाला अंक, चन्द्रमा की कला लेकर बढ़ेगी
वही तुम्हारे स्थान पर हो जायेगा आसीन
तुम अपनी जगह घटते-घटते शून्य बनकर ही जाओ उदासीन
तुम्हारा उदय हुआ पूर्व जन्म का पुन्य
तुम बन गये अनुभव धन शून्य।

एक मक्कार का निर्णय

राम बनाम रावण की फाइल देखी गई
राम बिना मतलब निश्चरों से मामला उलझा रहे थे
उनकी समझने की भूल थी कि अनीतियों के तार सुलझा रहे थे
उन्हें, शूर्पणखा पर हाथ उठाने से लक्ष्मण को रोकना था
विश्वामित्र के यज्ञकुन्ड में राक्षसों को नहीं मुनियों को झोंकना था
सोने का हिरन घास ही तो चर रहा था
राम का क्या नुकसान कर रहा था
माना कि रावण ने सीता को बहकाया
सीता को बहकावे में नहीं आना था
रावण के साथ उन्हें नहीं जाना था
खरदूषण की रिपोर्ट है कि पंचवटी राम द्वारा खाली कर दी गई थी
सीता का पंचवटी में वास
अनधिकृत आवास
रावण को बलपूर्वक पंचवटी खाली कराने का
जन्मजात अधिकार था
यह उसका क्षेत्राधिकार था
सीता के अपहरण काण्ड में राम का हस्तक्षेप
रावण के व्यक्तिगत आसुरी अधिकार पर कुठाराघात
राम द्वारा अपत्ति, बिना बात की बात
राम का, नाजायज वितण्डावाद ।

खजुराहो : प्रथम दृष्टि

अश्व वेग, गज शक्ति, कपि चंचलता
उर्वशी मेनका, सैरन्ध्री, चन्द्रलता
पदचारी, चर्मधारी, कर्मकारी,
उच्छ्वास, ह्रास, परितोप,
उल्लास, अपरिमित कोप,
नृत्य, गायन, वादन, तोरण वन्दन
ऐन्द्रिय भोगों का शाश्वत नन्दन,
जिजीविषा का अभिनन्दन ।

खजुराहो : द्वितीय दृष्टि

आकाश बहुत नीचा दिखता,
जब कामुकता सर पर चढ़ ले।

आचार मौन, व्यवहार मुखर,
चुम्बन, आलिंगन, परिरम्भण
नर जगत समागम अपर्याप्त
आसन चौसठ का परिकम्पन

धर्मार्थ मोक्ष बिछुड़े साथी
जब काम लक्ष्य पर युद्ध बढ़ ले
आकाश बहुत नीचा दिखता
जब कामुकता सर पर चढ़ ले।

शार्दूल तेज की एक धार
कामुकता का ही क्या निखार
किस नारी की अनबुझी प्यास
किस जगती का यह ठगा प्यार

सब राग नाद अनसुने रहे
जब मानव एक राग पढ़ ले
आकाश बहुत नीचा दिखता
जब कामुकता सर पर चढ़ ले।

किस मतलब से एकान्त वास
किन भावों का ऊर्ध्वाच्छ्वास
ऊँचा पादप या तुच्छ घास
किसको फुरसत क्या आस पास

उन्मुक्त वेश बन्दी होता
जब जंजीरों से खुद मढ़ ले
आकाश बहुत नीचा दिखता
जब कामुकता सर पर चढ़ ले।

खजुराहो : तृतीय दृष्टि

कैसे करूँ तुम्हारा वन्दन तुम्ही बताओ ।
ऐन्द्रिय सुख तो त्याज्य नही है
मानव मन अविभाज्य नही हैं
पर योगासन जब भोग पराजित
कालिख कहूँ, कहूँ या चन्दन,
तुम्ही दिखाओ

कैसे करूँ तुम्हारा वन्दन, तुम्ही बताओ ।
संकट के बादल छाये थे
शत्रु युद्ध करने आये थे
पाँचजन्य जब बने पंचशर
कहूँ वीरता या क्रन्दन
तुम्हीं सुनाओ

कैसे करूँ तुम्हारा वन्दन, तुम्ही बताओ ।
नवरस की गंगा यदि बहती
यह पीढ़ी भिन्न कथा कहती
काम ग्रास जब हुये शेषमय
कैसे शिव है पत्थर नन्दन
तुम्ही सिखाओ

कैसे करूँ तुम्हारा वन्दन तुम्हीं बताओ ।

लड़खड़ाते शब्द, मन के

लड़खड़ाते शब्द मन के
भाव पूरा कह न पाये।

चाह अंगद पाँव बनकर
एक तिल भी हिल सकी क्या ?
मुस्कुराती विजन कलिका
युग युगों तक खिल सकी क्या ?

अति हठीले स्वप्न खण्डहर,
आज तक तो ढह न पाये
लड़खड़ाते शब्द मन के
भाव पूरा कह न पाये।

आदि किस अध्याय का हूँ ?
अन्त भी अपना न जानूं
मध्य से परिचय अधूरा
शेष क्या सपना न मानूं ?

कौन रोये हाथ सिर धर,
यह न पाये, वह न पाये।
लड़खड़ाते शब्द मन के
भाव पूरा कह न पाये।

निविड़तम रजनी गुजरती
क्षितिज की लाली बुलाये
शाप भी वरदान वनकर
जिन्दगी के द्वार आये
व्यर्थ ही तप, व्यर्थ का श्रम,
दीप जलते रह न पाये
लड़खड़ाते शब्द मन के
भाव पूरा कह न पाये ।

स्वयं सिद्ध प्रमेय

सूरज उगते समय संज्ञा रहता है
और डूबते वक्त सर्वनाम हो जाता है
दुनिया को प्रकाश से नहलाते नहलाते
अंधकार के गलियारे में खो जाता है।
लेकिन सच तो यह है कि न तो सूरज उगता है
और न वह डूबता है
देखने वालों का अक्षांश देशान्तर,
मत, मतान्तर
इतिहास भूगोल
उनका शब्द कोष, ज्ञान कोश
उनका अपना तोष, रोष,
सूरज को डुबाता, उगाता है
सूरज को मशाल दिखाकर पहचानने की जरूरत नहीं
प्रकाश स्वयं सिद्ध प्रमेय है
रोशनी उधार देते रहना ही सूरज का ध्येय है।

शुभकामना

पारिजात के पुष्प तुम्हारी खुशियों का शृंगार करें
अष्ट सिद्धियाँ निधियाँ सारी जीवन का भण्डार भरें
सुर धनुषी इच्छायें खुद ही अभिनव तव मनुहार करें
नामित हर्ष, अनामित गौरव दिग् दिगन्त में प्यार भरें।

वारम्बार

मेरी कामनाओं की चिता पर
कोई प्रासाद खड़ा करे-मुझे स्वीकार है
मेरी आकांक्षाओं की समाधि पर
कोई विवाद खड़ा करे-मुझे स्वीकार है
अपने सपनों के खण्डहर में ही मै सन्तुष्ट हूँ
न किसी की जीत है, न किसी की हार है।
यह तो संसार है।
उद्घोषित जीवन प्रमेयों के वावजूद
कोष्ठकों मे कही गई बातों की भरमार है
स्वयं प्रकाशित प्रकरण के वावजूद
एकाकी स्वगत सलापों की आवृत्ति
वारम्वार है।

परिचय का आधार न पूछो

परिचय का आधार न पूछो
संग हमारा युगों पुराना।
नाम, ग्राम, वस कृत्रिम रेखा,
अब तक देखा या अनदेखा

सुर लय गति चाहे जो भी हो
दोनों का है वही तराना
परिचय का आधार न पूछो
संग हमारा युगों पुराना।

वैसे कितने साथी मिलते
भावों के शतदल क्या खिलते ?
अक्षर मन्त्र सभी समरस है
क्लेशों का भी वही घराना।

परिचय का आधार न पूछो,
संग हमारा युगों पुराना।
सुधियों की सौगात निराली
भरती रहती जीवन प्याली

इतने पास आ गये हम तो
दुनिया से क्या आँख चुराना।
परिचय का आधार न पूछो,
संग हमारा युगों पुराना।

क्रय विक्रय

मेरा जीवन न तो भिक्षा है, न उपदेश
किसी वनजारिन इच्छा का नहीं है यह उपनिवेश
पंचभूत काया कितनी वार,
हुई है इस पार, उस पार
आयेगी वारम्वार।
कैसी जय, कैसी पराजय
किस स्थिति से हो सकता है भय
कैसे हो सकता है तय—
हर पिपासा किसी अक्षांश देशान्तर का अभिनय
इच्छा अनिच्छा का विवशतापूर्ण परिणय
भावनाओं का असफल क्रय विक्रय।

शाखोच्चार

आवश्यकताओं के त्रिभुज में
ठहराव का बिन्दु मचल नहीं सकता
निशा की विदाई करता हुआ बाल रवि
तुरन्त अस्ताचल जा नहीं सकता
क्षितिज एक ही दिशा का कायल नहीं
धरती और आकाश कई विन्दुओं पर
एक दूसरे का मनुहार करते हैं
पशु, पक्षी, कीट, पतंग सुवह शाम
इसी का तो शाखोच्चार करते हैं।
विछोह की चहेती मौत तो
किसी की भी दासी हो सकती है
मिलन की प्रेयसी जिन्दगी
एक लम्बी उदासी हो सकती है
लेकिन उसके आँगन मे
उमंग, उल्लास के पौधे उगते रहे हैं
आशा के अंकुर अपने आप फलते फूलते रहे है।

दिन फिरते हैं

महत्वाकांक्षाओ के पिरामिड
एक दिन मे नही खड़े होते ।
नवाकांक्षाओं के बीज
एक दिन में नही बड़े होते ।
वातानुकूलित कमरों में न तो
पिरामिड बन सकते है
और न बन्द कमरों में
वृक्ष प्रत्यारोपित होते हैं ।
जोर जबर्दस्ती से उन्हें खड़ा कर दिया जाये
तो धराशायी हो जायेंगे
लगाने वाले पता भी नही पायेंगे
बीज अँखुआते है
पौधे पनपते है
वृक्ष या तो खड़े रहते है
या गिरते हैं
जब बीज उगते है
तो वृक्षों के ही दिन फिरते हैं ।

चलते जाना है

जब जब मेरी विफलतायें मेरा उपहास करने लगी
मेरी असफलतायें अट्टहास करने लगी
कुण्ठायें अनामन्त्रित आवास करने लगी
बाधायें मेरा परिहास करने लगीं
तब तब एक अनाम ऊर्जा ने मुझे उल्लसित किया
मेरा रिक्त चषक भर दिया
मैंने द्विगुणित उत्साह से कदम बढ़ाये
विफलतायें, असफलतायें, कुण्ठायें, बाधायें
जो निगल जाने को खड़ी थीं सुरसा की तरह मुंह फैलाये,
प्रगति का मंगलाचरण पढ़ने लगी
शिवाचरण करने लगी।
लेकिन नहीं बनना है मुझे परी कथा का नायक
नही बनना है आलोचकों का अधिनायक
अभी कई सागर तैर कर पार जाना है
अभी कई अरण्यों को पैदल झेल जाना है
अभी तो बस चलते जाना है
बस चलते जाना है।

मदीना और मक्का

मेरी तपस्या किसी बलाका को भस्म करने के लिए नहीं है
मेरी प्रतिज्ञा किसी तापसी बाला के औपचारिक रस्म अदाई के
लिए नही है।

मेरे विचार तन्तु छुई मुई के पौधे नही
किसी के लिए मक्खी छींक जाये
तो सारा मंच रौंदे नही
सोने वाले सोते रहें
जागरण के पुरोधा मेरे साथ हों
तो कोई नींद में भी चौंके नहीं—
यह न चौका है न छक्का,
और न ही विपदा का धक्का,
क्यों बुरा माने कोई चोर या उचक्का
मेरे गीत ही हैं मेरा मदीना और मेरा मक्का।

आमरण

अभिनव राहों ने मुझे आमन्त्रित किया
नुकीले काँटों ने मुझे नियन्त्रित किया
काँटों ने अपनी शक्ति नही पहचानी थी
अपनी सीमा कभी नही जानी थी
मेरी गति को रोकने में टूट गये
मेरी प्रगति के पगों ने खून के आँसू रोये
अपने रुधिर से काँटों के कब्र धोये
काँटे अपने सगे सम्बन्धियों के साथ बहुत पीछे छूट गये।
अभिनव चाहो ने जीवन को मोड़ दिया
अन्धी कुण्ठाओं को छोड़ दिया
पिटी पिटाई लकीरों का नही हुआ है क्षरण
लेकिन मुझे अभीष्ट नहीं था वह सुरक्षित आवरण
कैसे कर सकता था वह आचरण
मेरा संकल्प ही है नव पथ वरण
आमरण।

विन्दु अभिराम

श्मशान भूमि को क्या सुबह क्या शाम
गुफा में सोये पत्थर को क्या वर्षा क्या घाम।
उपवन ही उजड़ता है, वही होता है वीरान
सुमन तो कहीं हँस लेगा
पवन तो कहीं वह लेगा
सुगन्ध की कहानी कह लेगा
मौसम कभी कभी लगाता है अर्द्ध विराम
मौत, जिन्दगी का नहीं है पूर्ण विराम
वह है प्रशान्त उन्मुक्ति रेखा का एक विन्दु अभिराम।

अजनबीपन

सन्नाटेपन और अकेलेपन के उद्यान में
मानवीय रिश्तो के पौधे उगने लगे
भावनाओं और संवेदनाओं के किसलय
कस्तूरी की सुगन्ध से महकने लगे।
वर्जनाओं के ठूंठ आकुल, व्यर्थ में
निषेधों के तुषार व्याकुल, व्यर्थ में
कुण्ठाओं के कृपाण भय-संकुल व्यर्थ में।
उदासी, अकेलापन, बासीपन, अजनबीपन—
अपरिभाषित आतंक।
जीवित मुर्दो के मुहल्ले में
अपनापन नहीं पनप सकता
खोटे सिक्कों के संरक्षण में असली सिक्का
प्रामाणिक रूप से नही खनक सकता।
कटु अनुभवों का आतंक कुहासा बनकर छा सकता है
पर जिजीविषा को नही खा सकता है।

मूलाधार

नींव के ईंटों पर किन लोगों के नाम है, मालूम नहीं
मीनार, जो अभी बनी नहीं, सुबह उभरे या शाम, मालूम नहीं
बन्द कमरों के लोग अपनी छाया से जूझने लगते है
ऊपर जाने में असमर्थ पंगु अपनी ही खोदी खाइयों में कूदने
लगते हैं।

नींव, मीनार, कमरे, खाइयाँ
आन्तरिक भवन की परछाइयाँ।
शानदार अतीत
सुनहरे सपने
किसके हुए है अपने;
वर्तमान पर एकाधिकार
सम्पूर्ण भवन का मूलाधार।
अस्तित्व का संक्षिप्त सार।

पाषाण

जोड़, घटाना, गुणा. भाग
प्रमेय, उपप्रमेय या कहीं का हिसाब
अपने आप न कागज का, न लेखनी का सुहाग
सब कुछ स्याही का अनचाहा फाग—
गिलहरी छिलके कुतरती रही
जिन्दगी की हर परत दुःख दुःशासन के हाथों उघरती रही
जरूर कहीं दूर कृष्ण की बाँसुरी बजती रही
इस बार शायद न थके दुःशासन के हाथ
शायद पीताम्बर धारी न दे पायें साथ
पांचाली मन ही मन क्लीवों को गिनती रही
अपनी कुण्डलिनी शक्ति को भजती रही
परिधान की लपेट में फँस गया दुःशासन, निष्प्राण
नारी की शक्ति के सम्मुख बन गया पाषाण।

त्यौहार

सपनों के महल जब एक खम्भे पर टिक गये
तो खण्डहर के हाथों मानों बिक गये
रेंगने वाले घोंघों से पवन गति की चर्चा मत करो
नाराज हो जायेगा रेंगना भी बन्द कर देगा
शृगाल से सिंह की तेजस्विता मत बखानो
नाराज हो जायेगा बोलना बन्द कर देगा
मोती की तलाश में सीपियों का मनुहार
न किसी की जीत है न किसी की हार
विवश होंगे सभी-नाविक, मौसम, डाँड, पतवार
जब तट पर ही बँधे रहना हो जाये त्यौहार।

शेष बचा था

जिन्दगी से समृद्धि फिसल गई
पीछे के द्वार से सिद्धि निकल गई
फिर भी शेष बहुत बचा था
सुविधाओं ने मुख मोड़ लिया
कही और नाता जोड़ लिया
फिर भी शेष बहुत बचा था
कीर्ति की चाँदनी ने मुँह बिचकाया
उपेक्षा के बादलो में घर बसाया
फिर भी शेष बहुत बचा था
पौरुष ने कहा "अलविदा"
हम हो गये हैं किसी और पर फिदा
फिर भी शेष बहुत बचा था
जिन्दगी से दूर हो गया प्यार
नही कोई मनुहार, नही कोई ज्वार
नही कुछ शेष बचा था।

हे तपः पूत

(अपनी काया को सुखाने वाले एक तपस्वी के प्रति)

तुम मन्त्र सिद्ध,
पर अपूरित कामना के बाण से आपाद मस्तक विद्ध
तुमसे अगर हो जाये दीक्षित, बाज गिद्ध
तो क्षुत्क्षामकण्ठ,
क्या पा सके नीलकण्ठ
जीवित हो सकता क्या पाषाण खण्ड
मृत को जीवन देने मे तुम अशक्त
जीवित को मृत करने में बस सशक्त
दवी, अनुपम, अद्भुत चाक्षुष वर,
नि:सृत होता निर्झर भास्वर झर झर
हरित, पीत, नील, रक्त वर्णों को नकार
दर्शन सुषमा भावना को जर्जरित कर
निषेध शर, निषेध शर
दृगों को बन्द किया
किससे, कैसा अनुबन्ध किया
क्या शुतुमुर्ग पद्धति अभीष्ट;
क्या न देखना मात्र इष्ट;
क्या अदर्शनीय रह गया;

क्या अवाछनीय चुक गया;
वन्द किये चर्म नयन
खुल सके क्या प्रज्ञा नयन ?
अथवा प्रतिभा नयन
अथवा क्या पा लिया शिव का तीसरा नयन ?
नयन का वरदान
अदर्शन का अभिशाप
एक अपरिमित पुण्य को
वना डाला वस घोर पाप।
नयन को मूँद लिया
कौन सा अश्वमेध जीत लिया ?
हो गया कौन सा चमत्कार ?
चतुर्दिक् अभावों का हाहाकार
विवशता का चीत्कार
गरीवी, भूख, पिपासा, बेरोजगारी के
सर्पो का वढ़ता रहा फूत्कार।
तुम मन्त्रसिद्ध
पर अपूरित कामना के वाण से आपाद मस्तक विद्ध
तुम पुष्ट पग द्वय से संयुत
तुम पुष्ट कर द्वय से संयुत
इनको गति से करके वियुक्त
कर्मठता से करके विमुक्त
तुम कहाँ चले, ?
तुम किधर भले ?
ये चरण पर्वतों को लाँघते
ये कर सागरो को वाँधते
पैरों की गति को रोक दिया

हाथों को आनमन की कोल्हू में झोंक दिया
अब कर अशक्त
अब पग अशक्त
क्या वैनतेय भी चले बिना पा सकता गन्तव्य ?
क्या राम, भुजाओं को चलाये बिना हो सकते क्षन्तव्य;
क्या बिना किये, क्या बिना चले
हो गई सिद्धि,
मिल गई कौन अपरिमित निधि
बताओ कैसे हुई तक विधि
बताओ उसका रूप
बताओ उसका रंग
अन्यथा पंगु तुम्हारा तप
अन्यथा पंगु तुम्हारा जप
तुम मन्त्र सिद्ध
पर अपूरित कामना के बाण से आपाद मस्तक विद्ध
देख लो प्राची का वह द्वार
उषा की लाली का त्यौहार
निशाघट भरती बारम्बार
इन्द्रियाँ जीवन की उपहार
सभी निधियों का है आगार
छलकता मानवता का प्यार
क्यों मृत्यु वरण सौ बार
चलेंगे जब भी हम उस पार
करेंगे कुछ भी नही नकार
पूर्ण से घटा पूर्ण ओंकार ।

पन्द्रह अगस्त

निष्प्राण शब्दों की लाशों को
केवल खाद बनने दो,
मत उखाड़ो,
भूमिस्थ कीट पतंगों का
स्वाद बनने दो।
इतिहास का नपुंसक बोध
बनता जा रहा है बस एक दिमागी बो।
कूचियों का रंग
होता जा रहा है बदरंग
स्वरों का सरगम
सुनाता है केवल गम
दिवस, मास, संवत्सर,
निर्बीज संकल्पों के पक्षधर अवसर।

निज चिता की भस्म से

निज चिता की भस्म से—
मस्तक सजाये जा रहा हूँ।
शिव नहीं न अघोर हूँ
न हाथ टूटो डोर हूँ

रात में भी भैरवी के
गीत गाये जा रहा हूँ।
निज चिता की भस्म से
मस्तक सजाये जा रहा हूँ।

सात स्वर, पर राग मूर्छा
पद निकलते जा रहे है
भावना के क्रौंच घायल
पर सिसकते जा रहे है

तार वोणा के शृंखल
पर वजाये जा रहा हूँ
निज चिता की भस्म से
मस्तक सजाये जा रहा हूँ।

प्यार का चन्दन यहाँ
अंगार बनकर जल उठा
स्नेह सुमनों में किधर शक
सर्प बनकर पल उठा

स्वप्न के अवशिष्ट खण्डहर
नित बसाये जा रहा हूँ
निज चिता की भस्म से
मस्तक सजाये जा रहा हूँ।

"हा" बनाम "नहीं"

निषेधों की खपच्चियों पर टिके दीपक
वर्जनाओं के हाथ नीलाम हुए दीपक
देर तक अंधेरे से नहीं जूझ पायेंगे
वर्जनाओं के तीर, सच मानों,
निशाने में चूक जायेंगे
स्नेहहीन दीपक, धारहीन तीर
शब्दों की विडम्बना है
अर्थो के लाछन
निषेधो, वर्जनाओं अस्वीकृतियों के चक्रव्यूह में
जीवन मूल्य अभिमन्यु नहीं बन सकते है
अधिक से अधिक किसी शिखण्डी के बाण बन सकते है
लेकिन भीष्म स्वयं मृत्यु का वरण कर रहे थे
अपनी भूलों का पुरश्चरण कर रहे थे
रोशनी, अंधेरे की गैरहाजिरी नही है
फूल की खुशबू, हवा की बहादुरी नही है
स्वीकृतियो के कन्धो पर आलोक शिखर खड़े होते है
भवन के प्रारम्भ में, मध्य में, अन्त में
दिग् दिगन्त में,
"नहीं" "नही" की रिक्तता की जगह
"हाँ" के शिलाखण्ड पड़े होते है।

किसे खोजती हो रुपसि, तुम

किसे खोजती हो रुपसि ! तुम
प्रभा पुंज को साथ लिये ।

रत्न सुघर क्या स्वयं खोजने
कभी यात्रा पर निकला है ?
रूप सुधा पग पग बरसाये
वह पूनम चन्द्रकला है
किसे तृप्त करने निकली हो
सुन्दर घट की सुरा पिये ।
किसे खोजती हो रुपसि ! तुम
प्रभा पुज को साथ लिये ।

बेगानो की इस बस्ती में
अपना कह किसे बुलाऊँ ?
सभी अधजगे सभी उनींदे
सुधि की सेज किसे सुलाऊँ ?

खोज तुम्हारी क्षितिज छुवन है
मृग मरीचिका नीर पिये
किसे खोजती हो रुपसि ! तुम
प्रभा पुंज को साथ लिये ।

जब तक दीपक स्नेह सना है
वाती से जलने का सौदा
जब तक सुमन सुरभि से सुरभित
महकाने का रुचिर मसौदा

कृपा दृष्टि इस ओर फिरेगी
यह लघु आशा लिये, जिये।
किसे खोजती हो रूपसि ! तुम,
प्रभा पुंज को साथ लिये।

हर कदम पड़ाव

हर कदम पड़ाव पर
मन कहीं रमा नहीं।
वसन्त रथ यहाँ रुका
अनन्त नभ यहाँ झुका

गिरि शिखर प्रवाहरत
जल कहीं थमा नहीं
हर कदम पड़ाव, पर
मन कहीं रमा नहीं।

दिख गये चपल नयन,
कर लिये मधुर चयन
प्यास अनबुझी रही
पूर्णिमा, अमा नहीं।

हर कदम पड़ाव पर
मन कहीं रमा नहीं।
हर खुशी विषादमय
पर्व सब कुस्वादमय

साँस की लड़ी यहाँ
शर्त है, शमा नहीं
हर कदम पड़ाव, पर
मन कहीं रमा नहीं।

नन्हे-नन्हे दीप ! जलो तुम

स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हें-नन्हें दीप ! जलो तुम
सोच रहे, क्यों काँप रहे हो
अनुभव से क्या नाप रहे हो

अब तो मंजिल बहुत पास है
चले बहुत, कुछ और चलो तुम
स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हे नन्हे दीप ! जलो तुम।

क्यों तल की कालिमा लजाती
सुनो न कृमि की ठकुर सोहाती
अपनी लौ से छले गये हो
इतने पर भी जग को न छलो तुम

स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हे नन्हे दीप ! जलो तुम।
अभी स्नेह अनुबन्ध शेष है
अभी छन्द सरगम विशेष है

गहन, सघनतम रजनी में भी
बन प्रकाश का पुंज पलो तुम।
स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हे नन्हे दीप ! जलो तुम।

कही सगर सुत शप्त दीन हैं
कही भगीरथ तपः लीन हैं
गंगोत्री में ठोस हिम सही
समतल गंगा रूप गलो तुम

स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हे-नन्हे दीप ! जलो तुम ।
अनगिन पौधे जमते मिटते
चन्दन में भी तक्षक लिपटे

सदा सुहाना कल्पवृक्ष वन
हँस-हँस फूलों और फलो तुम ।
स्वयं अँधेरा दूर रहेगा
नन्हे-नन्हे दीप ! जलो तुम ।

चिनगारी की वसीयत

राख ने सोचा उसने चिनगारी को खत्म कर दिया
प्रकाश के स्वत्व को भस्म कर दिया
लेकिन चिनगारी ने बुझने के पहले
अंधेरे से जूझने के पहले
अपनी मौत के परवाने पर हस्ताक्षर किया था
और वसीयत में लिख दिया था कि
उसकी राख को उजाले के हवाले किया जाये
और अंधेरे के मुहल्ले वालों को बतला दिया जाये कि,
रोशनी जहाँ भी पलेगी
जब भी जलेगी
अंधेरे के साथ नहीं चलेगी ।

किसके सँग खुशियाँ बाटूं मैं

किसके सँग खुशियाँ बाँटूं मैं;
दुख तो खुद पीता जाता हूँ।

अब तो सब सुमनों में तक्षक
अपना डेरा डाल दिये हैं
मधु मासों के आवासों पर
पतझर घेरा डाल दिये हैं

किसके सँग शिव पर्व मनाऊँ,
खुद भी अब रोता जाता हूँ।
किसके सँग खुशियाँ बाटूं मैं,
दुख तो खुद पीता जाता हूँ।

प्यादों को पैदल चलने में
क्लेश बोध अब होता है
अश्व दुर्ग मे फँसा बँधा
कौशल गरिमा गति खोता है

जिच में कोई और फँसे, मैं
चले बिना पीटा जाता हूँ
किसके सँग खुशियाँ बाटूं मैं
दुख तो खुद पीता जाता हूँ।

मिथ्या जग हो, मिथ्या पग हो
पर दुख तो पूरी सच्चाई
चलने का दुख उससे पूछो
जिसके पैरों फटी बेवाई

मरण पंक्ति में खड़ा हुआ, पर
जब तक हूँ जीता गाता हूँ।
किसके सँग खुशियाँ बाटूँ मैं
दुख तो खुद पीता जाता हूँ।

सपनों के खँडहर में

सपनों के खँडहर में कोई
चुपके दीप जलाता है।

पाषाणों की इस नगरी में
प्रतिमा सर्जन पर वन्धन
कैसे त्यागे गन्ध सहज शुचि
सर्पों से लिपटा चन्दन
भूली सुधि के गलियारे में
रह रह कौन बुलाता है?
सपनों के खँडहर में कोई
चुपके दीप जलाता है।

जीवित कफन याचना करते
दिवंगतों का वन्दन
कागज के फूलों में वन्दी
उल्लासों के अभिनन्दन
उजड़े मन मरुथल में कोई
मधुमय कुसुम खिलाता है
सपनो के खँडहर में कोई
चुपके दीप जलाता है।

कितनी बार पुकारा मैंने
सन्देशों से, मुखर स्वरों से
कितने अभिशापों को झेला
मोड़ा मुख उपलब्ध वरों से
वादों की अफवाहों से क्यों
कोई अब सहलाता है ?
सपनों के खँडहर में कोई,
चुपके दीप जलाता है।

मन की पीड़ा इतनी गहरी
सागर तल भी बौना है
क्लेश अपरिचित नहीं, यहाँ तो
ओढ़न और बिछौना है
आँसू जो अब गीत बन गया
किसकी प्यास बुझाता है
सपनों के खँडहर में कोई
चुपके दीप जलाता है।

गीत कुछ निर्बन्ध गा लें

गीत कुछ निर्वन्ध गा लें
रश्मियों से वोल दो, कुछ
प्रहर देहरी पर रुकें
वर्जना की शृंखलाएँ
अव टूट लें या कुछ झुकें
प्रेम के आलोक में ही,
चिर मिलन के छन्द गा लें।
गीत कुछ निर्बन्ध गा लें।

पल दिवस संवत वनेंगे
फिर वीतते ही जाँयगे
मधु पलों के कलश अव तो
वस रीतते ही जाँयगे
स्रवित बूँदे वाँट कर ही
अस्मिता अनुवन्ध पा लें।
गीत कुछ निर्बन्ध गा लें।

पूर्णिमा की चाँदनी को
उस शिखर के पार भेजो
वृद्ध जर्जर विधि निषेधों
को विनय पूर्वक सहे जो
भावना के मेघ मन के
क्षितिज पर स्वच्छन्द छा लें।
गीत कुछ निर्बन्ध गा लें।

अर्चना कब तक करोगे

बुझ चुके जो दीप, उनकी
अर्चना कब तक करोगे ?

स्नेह का लवलेश भी, इन
रिक्त पात्रों में नही है
गति स्फुरण का शेष अब, इन
शुष्क गात्रों, में नहीं है
पत्थरों में देवता की
कल्पना कब तक करोगे ?
बुझ चुके जो दीप, उनकी
अर्चना कब तक करोगे ?

क्रूर अंगुलि माल, गौतम
से समर्पण चाहते है
काष्ठ, कुश यजमान से अब
पूर्ण तर्पण चाहते है
ध्वंस ही संकल्प जिनका
वन्दना कब तक करोगे ?
बुझ चुके जो दीप, उनकी
अर्चना कब तक करोगे ?

बाँसुरी के सात स्वर ये
क्या निरर्थक ही बने हैं ?
निष्प्रयोजन सुर धनुष क्या
सात रंगों से सने है ?
शुष्क नीरस एक स्वर को
सर्जना कब तक करोगे ?
बुझ चुके जो दीप, उनकी
अर्चना कब तक करोगे ?

स्थान रिक्त रहा

महात्मा का दर्शन हुआ
सन्त ने प्रभावित किया
महाधीश की प्रभुता देखो
'ब्यूरोक्रेट' ने चकाचौंध पैदा की
छगुआ ने तिलक धारण किया
अहंकारी ने घृणा उत्पन्न की
चोर, डाकू, उचक्के
लगाते रहे चौके, छक्के
स्थान रहा रिक्त
एक व्यक्ति चाहिये स्नेह सिक्त
मानवता के क्षीर से अभिषिक्त ।

जिजीविषा

समय के गलियारे में कितने पदचाप
हृदय के आकाश पर भावनाओं के सुरचाप
पग ध्वनि किसकी-किसकी सुन लूं ?
किन-किन चित्रों को रँग लूं ?
अशोक, समुद्रगुप्त, हर्ष बाबर
नेपोलियन हिटलर पीटर
महाकाल के सीकचों में बटेर तीतर
शेष नहीं अस्थि पंजर
शेष नहीं इनके लाव लश्कर
भारवि भवभूति, कालिदास शेक्स पियर
जीवित आज भी जीवित उनकी असि
कितनी धारदार सरस्वती की असि ।
बाँस की बाँसुरी स्वयं नश्वर
पर सरगम की जननी के रूप में अनश्वर
काल की पुस्तक में एक प्रश्न ज्वलन्त
परिवेश की दावाग्नि में एकभाव अनन्त
विचार पंगु हो जाते हैं
जब विचारों की पालकी के कहार सो जाते हैं
आनेवाला कल बीते हुये कल की
प्रमाणित प्रतिलिपि नहीं हो सकता
मँहगाई अनीति, अनुचित लिप्सा की उलझनों में
मानव अपनी जिजीविषा खो नहीं सकता ।

एक पल आह्लाद का

एक पल आह्लाद का, शत
वर्ष यापन को लजाये ।

धूम्र केवल फैलता है
चिर समय तक सुलगने से
शिव न कोई बन सका है
राख में बस झुलसने से
एक कण की तीव्र ज्वाला
गहन तम को तो भगाये ।
एक पल आह्लाद का, शत
वर्ष यापन को लजाये ।

शुष्क होती भावसरिता
वर्जना की मरुथली में
प्यार का गन्तव्य खोता
कुछ निषेधों की गली में
एक तिल उत्साह अगणित
कलेश संवत्सर हराये
एक पल आह्लाद का, शत
वर्ष यापन को लजाये ।

जो कुहनियों पर चला था
क्या हिमालय पहुँच जाता ?
कौन उँगली थाम कर, नभ
की उँचाई पकड़ पाता ?
एक क्षण उत्साह का बस
तीन लोकों से मिलाये
एक पल आह्लाद का, शत
वर्ष यापन को लजाये ।

इच्छा

मैं चाहता हूँ पनपना
पर नहीं चाहता पसरना
उस बरगद की तरह
जिसकी शाखाएँ
धरती का सारा रस सोख लेती है
नन्हें पादपों का तन निचोड़, लेती है
मैं चाहता हूँ ऊपर जाना
पर उस पतंग की तरह नहीं है उड़ना
जिसकी डोर टूट गई हो
जिसकी छोर छूट गई हो
जिसे पवन का हल्का सा झोंका
झकझोर देती है
अनचाही राह पर मोड़ देती है।

गिद्ध

गिद्ध तो हमेशा रहे हैं और रहेंगे भी
लेकिन इनकी बढ़ती हुई कतार
एक अजीब माहौल पेश करती है
दहशत पैदा करती है
आसपास मुर्दों का प्राक्कथन बनती है
अथवा जीवितों को मृत बनाने का
सफल अनुष्ठान बताती है
श्मशान घाटों की अनुक्रमणिका हो जाती है
गिद्धों को प्रकाश के बीजों से क्या लेना देना
सागर ज्योति के ज्वार से ये कतराते हैं
ये आनन्द के नन्दन वन को झुठलाते हैं
सम्पाती और जटायु कब के मर चुके–
यहाँ के गिद्ध सीता हरण में हाथ बटाते हैं
गंगा की निर्मल धारा में शव प्रवाह का मंत्र जपते हैं
प्रतीक्षा है उस शुभ मुहूर्त की
जब ये गिद्ध मृत परम्पराओं की
सड़ी गली मान्यताओं की
लाशों पर ध्यान देंगे
अपनी उपस्थिति पर प्रामाणिक आख्यान देंगे।

अनुरागी होगा पहला कवि

अनुरागी होगा पहला कवि
राग से उपजा होगा गान
छलक कर प्यार कलश उर द्वार
हुई होगी कविता गतिमान ।

वही होगी आँसू की धार
आह भी निकली होगी खूब
पलक भी भीगी होगी डूब
नहाई होगी धरती दूब

राग अनुबन्धों में गुमनाम
रहा जो प्यार छन्द अनजान
बनेगा क्लेशों का जलपान
अकथ मानस तापों की खान

रसायन जीवन ज्योतिष्मान
प्यार की बूटी से यदि हीन
करुणातम जीव जगत में वह
नहीं कोई भी उससे दीन

मरुस्थल में बहती रसधार
गगन में बस जाये संसार
विषम समधारा में पतवार
हृदय में जब भी उपजे प्यार

कामना

किसी का लँगड़ा होना
अथवा लुंज पुंज होना
मेरे पैरों मे जूते न होने वाले क्लेश को घटाता नहीं
बढ़ाता है।

किसी का मस्तक विहीन होना
मेरे मस्तक पर तिलक न होने वाले क्षोभ को पचाता नही
ललकारता है।

किसी का काष्ठ अन्ध होना
मेरे एकाक्ष होने के रोप को भगाता नही
पुकारता है।

किसी का एक सप्ताह से भूखा रहना
मेरे भोजन न मिलने के असन्तोष को सँवारता नही
दुहराता है।

पैरों में जूते हों कि बढ कर दौड़ कर
किसी असहाय का सहारा बन जाऊँ
माथे पर तिलक हो कि फिसलते,डूबते
क्षत विक्षत होते लोगों का किनारा बन जाऊँ

मेरे युगल नयन सृष्टि की सुन्दर लिपियाँ पढ़ते जायें।
मेरे सुपोपित अंग विश्व में आनन्द कलश भरते जायें।

परित्यक्ता

पंक्ति से हटकर उड़े तुम,
अब हंस ! कितने दूर हो,
जानती हूँ, हिम शिला में,
चिर ताप से भरपूर हो।

प्रेरणा किससे मिली,
क्या स्रोत में सिद्धार्थ थे?
पर पलायन-मार्ग यह,
क्या क्लीव सब पुरुषार्थ थे;

बुद्ध तो थे त्याग-उन्मुख,
पर राग-परिसर तुम कसे
बन्धनों को तोड़कर फिर
इन बन्धनों में क्यों फँसे?

किन्तु गौतम बुद्ध का, पथ
मैं तुम्हें क्योंकर बताऊँ?
चाल शतरंजी चली जब
गोट पिटती क्या बचाऊँ?

वैभवो के बीच मे भी
कुछ कमी ही यदि फिर दिखी
न्याय की सौगन्ध तुमको,
रह न जाये वह अनलिखी।

अर्चना के सुमन सूखे
सब स्वप्न अब खँडहर हुए
साध्य ने ही किस घड़ी में
शुभ साधना प्रण हर लिए।

नियति अंकित पंक्ति को क्यों,
तुम धो रहे जलधार से
और निर्मल धवल होगी
बस अश्रुमिश्रित प्यार से।

प्रश्न करती सब निगाहें
झेलती मैं जा रही हूँ
पिट चुकी बाजी हमारी
खेलती मै जा रही हूँ।

सच बताना पा गये क्या
अब सब वही जो इष्ट था ?
सच बताना संग क्या,
इतना निभाना क्लिष्ट था ?

उत्तरों का हक न मुझको
प्रश्न तो अब भी करूँगी।
रिक्त मेरा चपक अब है
अश्रुजल से ही भरूँगी।

हास उत्सव मे तुम्हारे
टीस बनकर ही रहूँगी
तुम तो मेरे बन न पाये
मैं तुम्हारी ही रहूँगी।

कुछ सुमन के हार बनते
कुछ वनों में बिखर जाते
हाल मेरा देखते तो
एक पल तुम सिहर जाते।

जो किया अच्छा किया पर,
याद भी अपनी न भेजो
आदि हो या मध्य हो, फिर
अव अशिव शिव फल सहेजो।

सोचना मुझको नही पर,
अव सोचने पर वाध्य हूँ।
कह न पाई शिष्टता से
इसलिए तो अश्लाघ्य हूँ।

स्नेह की ही उष्णता से
वे वाक्य मेरे तप्त थे।
औपचारिकता अपरिचय,
सव क्लेश से संतप्त थे।

रोष करना, माफ करना,
प्यार के दो छोर है
जो तुम्हारे थे प्रशसक
वे लोग अव इस ओर है।

पर करूँ किससे शिकायत
सौ दोष किसके सर मढ़ूँ
पत्र मैं अव खुद लिखूँ तो,
स्वयं ही क्या उनको पढ़ूँ ?

भावना को कर तिरस्कृत
निज वुद्धि का यह जो वरण
उपकरण, भौतिक सभी क्या
अव सौख्य का अन्तिम चरण ?

दिवस की कुछ उलझनों मे
समय अपना काटते हो
पर कभी एकान्त संध्या में
स्वयं को तुम नापते हो ?

मैं हृदय की निज व्यथा को
अब न तुमसे कह सकूँगी
चाहती थी जिस तरह मैं
उस तरह क्या रह सकूँगी ?

मैं करुण गाथा सुनाकर
स्वयं ही सकुचा रही हूँ
तुम न सोचो संशयों के
जाल में पहुँचा रही हूँ।

मैं तुम्हें जंजाल से अब
मुक्ति देकर ही रहूँगी
मैं तुम्हारे राह की नव
युक्ति लेकर क्या करूँगी ?

नवल राहें हों मुबारक
हर पल उसी पथ पर बढ़ो
पवन गति को भी लजाते
तुम रुचिर द्रुत रथ पर चढ़ो।

पालकी मेरी यहीं पर
इस देहरी पर जब रुकी
वंश मर्यादा सुगर्वित,
थी आँख इस घर में झुकी।

मैं न बन पाई शकुन्तल
पर दुष्यन्त तुम कैसे हुए
शाप किस मुनि का लगा है,
सर्वस्व क्या पैसे हुए ?

विश्व की इस भीड़ में बस,
दो पग तुम्हारे सँग चली
पथ तुम्हारा उस नगर में
पर मैं मरूँगी इस गली।

सुन रही हूँ-रोगियों के
रोग का करते निवारण
है दवा कोई नई जो
रोग से पनपे अकारण।

यह दवा कैसी लिखी है
आग से क्या आग बुझती ?
ध्वस्त मस्तक हो गया तव
आँख क्या अब खाक खुलती ?

मैं न ऋक् सम पुनीता
मानती हू-मैं न गीता
मैं धरा की कोख में फिर,
छिप बनूं क्या आज सोता ?

सुमन मेरे हाथ में ही
अब सूख जायेगे यहाँ
अर्चना को माल प्रतिदिन,
अब विखर जायेगी यहाँ।

गगन में तारे उगेगे
चन्द्र भी प्रतिनिश हँसेगा
पवन छू कर देह मेरी,
फब्तियाँ मानों कसेगा।

माँग का सिन्दूर पोछूँ
हाथ का कंगन उतारूँ ?
छोड़ दू मेंहदी महावर
वमन का क्या रंग धारूँ ?

लाभ क्या स्वर फूंकने से
बाँसुरी जब फूट जाये।
लाभ क्या जल डालने से
गागरी जब फूट जाये।

अल्पना को क्या रचूँ अब
द्वार ही पाहुन नही है
कल्पना को क्या रँगूँ इस
पार मधु सावन नही है।

पत्र तो तुमने लिखा पर
शुभ स्नेह सम्बोधन नहीं।
हृदय से यदि चाहते तो
किस क्लेश का शोधन नहो ?

दीप तो अब भी जलेंगे
पर तिमिर छाया रहेगा।
मधुमास के छल वेश में
पतझर आया रहेगा।

शाप देकर मैं न अपने
पुण्य का क्षय ही करूँगी।
मैं कभी सद्भावनाओं
का न अपचय ही करूँगी।

उस देह संस्कृति जिन्दगी से
जब कभी भी ऊब जाना
भीड़ वाहन शोर में ही
कण्ठ तक जब डूब जाना।

याद करना खेत उर्वर
सरसों भरे खलिहान को।
याद करना गाँव झुरमुट
उन्मुक्त विरहा गान को।

द्वार की तुलसी तुम्हारे
पुनरागमन की राह में।
पल्लवित होती रही है
परिचित छुवन की चाह में।

आम की नव मंजरी, नव
पत्ती नव अंकुरित फल
गाय श्यामा है रँभाती
माँ बनेगी आजकल।

तीज का व्रत आ रहा है
मैं निराजल फिर रहूँगी।
मानसिक तप ज्वाल के इस
ताप को फिर फिर सहूँगी।

तर्क से परिचय न मेरा
बुद्धि भी निर्मल नही।
रेत जग है, मीन मैं हूँ
उस क्षितिज तक भी जल नही।

ऋण सभी के बोझ है पर
अचरज यहाँ कुछ यों रहा
ब्याज का जिम्मा जनम भर
औ मूल ज्यों का त्यों रहा।

द्रौपदी आँचल न खोये
प्रिय कृष्ण का संबल मिला
पर मुझे तो परिधान में
बस एक दूर्वादल मिला।

स्वर्ण मणि की सेज सोऊँ
यह याचना मेरी नही
रजत का पलना सहेजूँ
यह कामना मेरी नही।

अनुचरों से ही घिरूँ मैं
यह यत्न मेरा न था
डूब जाएँ शेष सब स्वर
यह राग तो तेरा न था।

प्यार का लघु क्षण प्रतीक्षित
कुछ वायवी वह बन गया
डर, उपेक्षा के शरों से
हत रुधिर से ही सन गया।

व्रत नियम उपवास मेरी
आस्था की सुदृढ़ नींव हैं
मिलन के पल विरह के क्षण
क्या वालि और सुग्रीव हैं।

गणित, ज्योतिष, नियति छलिया
पर हृदय का स्वर अमर है
पथ इधर निश्चित मुड़ेंगे
आज भी प्रत्यय अजर है।

विश्व का वैभव न माँगूं
स्वर्ग वैभव भी न वांछित
लौट आओ कुशल से तुम
मोक्ष से भी श्रेष्ठ कांक्षित।